



॥ ॐ ॥
॥ श्री परमात्मने नमः ॥
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

मैत्रायणी उपनिषद्





विषय सूची

॥अथ मैत्रायण्युपनिषत्॥	3
मैत्रायणी उपनिषद	5
प्रथमः प्रपाठकः प्रथम प्रपाठक	5
द्वितीयः प्रपाठकः द्वितीय प्रपाठक	10
तृतीयः प्रपाठकः तृतीय प्रपाठक.....	18
चतुर्थः प्रपाठकः चतुर्थ प्रपाठक	23
पंचमः प्रपाठकः पंचम प्रपाठक.....	33
शान्तिपाठ	43



॥ श्री हरि ॥

॥ अथ मैत्रायण्युपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

वैराग्योत्थभक्तियुक्तब्रह्ममात्रप्रबोधतः ।
यत्पदं मुनयो यान्ति तत्त्रैपदमहं महः ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।
सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिषद्वेद्य ब्रह्म है। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात् मैं ब्रह्म से विमुख न होऊँ और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो। उपनिषदों में जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान में लगे हुए मुझ में स्थापित हों। मुझ में स्थापित हों।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥



॥ श्री हरि ॥

॥ मैत्रायण्युपनिषत् ॥

मैत्रायणी उपनिषद्

प्रथमः प्रपाठकः प्रथम प्रपाठक

ॐ बृहद्रथो ह वै नाम राजा राज्ये ज्येष्ठं पुत्रं
निधापयित्वेदमशाश्वतं मन्यमानः शारीरं
वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम स तत्र परमं तप
आस्थायादित्यमीक्षमाण ऊर्ध्वबाहुस्तिष्ठत्यन्ते सहस्रस्य
मुनिरन्तिकमाजगामाग्निरिवाधूमकस्तेजसा
निर्दहन्निवात्मविद्भगवाञ्छाकायन्य उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं
वृणीश्वेति राजानमब्रवीत्स तस्मै नमस्कृत्योवाच
भगवन्नाहमात्मवित्त्वं तत्त्वविच्छृणुमो वयं स त्वं नो
ब्रूहीत्येतद्वृतं पुरस्तादशक्यं मा पृच्छ
प्रश्नमैक्ष्वाकान्यान्कामान्वृणीश्वेति शाकायन्यस्य
चरणवभिमृश्यमानो राजेमां गाथां जगाद ॥ १ ॥

बृहद्रथ नामक राजा को अपने शरीर की नश्वरता का विवेक जाग्रत् होने पर अतितीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। इस कारण वह अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर वन में चला गया। वहाँ जाकर उस (राजा) ने लम्बे समय तक कठोर तप किया। वह प्रतिदिन सूर्य की ओर देखते हुए अपने दोनों हाथ ऊपर करके खड़ा रहता। एक सहस्र वर्ष के

उपरान्त उसकी उग्र तपस्या के परिणाम स्वरूप शाकायन्य नामक आत्मवेत्ता महामुनि उस (राजा) के समक्ष आये। उन (मुनि) का तेज धूम्ररहित अग्नि की भाँति था। उन श्रेष्ठ मुनि ने राजा से कहा- हे राजन् ! उठो-उठो, वरदान माँगो। उस राजा ने उन (मुनि) को नमस्कार करते हुए कहा- हे भगवन् ! मैं आत्मवेत्ता नहीं हूँ, हमने सुना है कि आप ब्रह्मतत्त्ववेत्ता हैं। अतः आप हमें सत्यज्ञान रूप वरदान प्रदान करें। ऐसा सुनकर उन श्रेष्ठ मुनि ने कहा- हे इक्ष्वाकुवंशीय राजन् ! तुम अन्य कोई दूसरा वर माँग लो। इस तरह के प्रश्नों को मत पूछो, जिन्हें प्राचीनकाल से ही अत्यन्त कठिन एवं दुरूह माना जाता रहा है। ऐसा सुनकर राजा बृहद्रथ ने उन मुनि श्रेष्ठ शाकायन्य के चरणों में प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहा- ॥ १ ॥

भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्माश्रुद्रु
षिते विण्मूत्रवातपित्तकफसङ्घाते दुर्गन्धे
निःसारेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः ॥ २ ॥

हे भगवन् ! यह शरीर हड्डी, त्वचा, स्नायु, मज्जा, मांस, वीर्य, रक्त, अश्रु, विष्ठा, मल, मूत्र, वायु, पित्त, कफ आदि से परिपूर्ण है। यह शरीर दुर्गन्ध से युक्त एवं तत्त्वरहित है, तब कामनाजन्य भोगों की फिर क्या आवश्यकता है? ॥ २ ॥

कामक्रोधलोभभयविषादेर्ष्येष्टवियोगानिष्टसम्प्रयोगक्षु
त्पिपासाजरा मृत्युरोगशोकाद्यैरभिहतेऽस्मिञ्छरीरे किं
कामोपभोगैः ॥ ३ ॥

(हे भगवन्!) काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, विषाद, इर्ष्या, प्रियवस्तु (पदार्थ) के वियोग तथा अप्रिय के मिलनजन्य दुःख, क्षुधा-पिपासा, जरा-मरण, शोक आदि से यह शरीर अत्यन्त परेशान रहता है, ऐसी स्थिति में कामनाओं, उपभोगों की क्या आवश्यकता ? ॥३॥

सर्वं चेदं क्षयिष्णु पश्यामो यथेमे
दंशमशकादयस्तृणवन्नश्यतयोद्भूतप्रध्वंसिनः ॥ ४ ॥

(हे भगवन्!) यह सम्पूर्ण संसार क्षण-भङ्गुर है। मनुष्यादि समस्त भूत-प्राणियों को (मैं) निरन्तर विनष्ट होते हुए देखता रहता हूँ। ऐसे ही अनेकानेक वे सभी क्षुद्र जीव दंश, मच्छर-कीटादि उत्पन्न होकर कुछ ही समय में काल-कवलित हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः
केचित्सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयश्वयौवनाश्ववद्धिया
श्वश्वपतिः शशबिन्दुहरिश्चन्द्रोऽम्बरीषो
ननूक्तस्वयातिर्ययातिनरण्योक्षसेनोत्थमरुत्तभरतप्रभृतयो
राजानो मिषतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियं
त्यक्त्वास्माल्लोकादमुं लोकं प्रयान्ति ॥ ५ ॥

इन (समस्त क्षुद्र जीवों) की क्या गणना, इनसे भिन्न महान् धनुर्धारी, शूरवीर व अन्य और कितने ही सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलाश्व, यौवनाश्व, वधियाश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, अननूक्त स्वयाति, ययाति, अनरण्य, उक्षसेन, उत्थ, मरुत् और भरत आदि ये सभी चक्रवर्ती नरेश अपने बान्धवों सहित देखते-



देखते ही इस लोक के महान् ऐश्वर्य को त्यागकर अकस्मात् ही शरीर त्यागकर परलोक के लिए प्रयाण कर गये ॥ ५ ॥

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये
गन्धर्वासुरयक्षराक्षसभूतगणपिशाचोरगग्रहादीनां
निरोधनं पश्यामः ॥ ६ ॥

(हे श्रेष्ठ मुने!) मात्र मनुष्य ही नहीं, बल्कि असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत-समुदाय, पिशाच, सर्प, ग्रह और उपग्रह आदि को भी हम विनष्ट होते हुए देखते हैं ॥६॥

अथ किमेतैर्वान्यानां शोषणं महार्णवानां शिखरिणां
प्रपतनं ध्रुवस्य प्रचलनं स्थानं वा तरूणां
निमज्जनं पृथिव्याः स्थानादपसरणं सुराणं
सोऽहमित्येतद्विधेऽस्मिन्संसारे किं
कामोपभोगैर्यैरेवाश्रितस्यासकृदिहावर्तनं दृश्यत
इत्युद्धर्तुमर्हसीत्यन्धोदपानस्थो भेक इवाहमस्मिन्संसारे
भगवंस्त्वं नो गतिस्त्वं नो गतिः ॥ ७ ॥

इसके पश्चात् (राजा बृहद्रथ ने उन श्रेष्ठ मुनि शाकायन्य से कहा-) हे भगवन् ! यदि इन (चेतन प्राणियों) को भी छोड़ दें, तब भी अचेतन वस्तुओं में भी जैसे, बड़े-बड़े सागर शुष्क हो जाते हैं, पर्वत – शृङ्खलाएँ विशृङ्खलित हो जाती हैं, ध्रुव प्रदेश भी अपने स्थान पर केन्द्रित नहीं रह पाते, वृक्ष भी धराशायी हो जाते हैं, पृथ्वी भी अपने एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकती, समस्त देवगण भी अपने पद



से च्युत होते देखे जाते हैं, तब फिर ऐसी स्थिति में इस अहंकार से युक्त नश्वर संसार में विषय-वासनाओं के भोगों में आसक्त रहने वाले तो बारम्बार इस नश्वर जगत् में जन्म-मरण के चक्र में आबद्ध हुए – से दृष्टिगोचर होते हैं। इस कारण हे श्रेष्ठ मुने! इस अज्ञानान्धकार रूपी कूप में स्थित मण्डूक (मेंढक) की भाँति इस नश्वर जगत् में मैं भी पतितावस्था में स्थित हूँ। कृपया आप मुझे अपनी गति प्रदान करें अर्थात् मेरा उद्धार करें। मैं आपकी ही शरण में हूँ। आप ही एक मात्र हमारे आधार हैं ॥ ७ ॥

॥ इति प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥

॥ प्रथम प्रपाठक समाप्त ॥



॥ श्री हरि ॥

॥ मैत्रायण्युपनिषत् ॥

॥ मैत्रायणी उपनिषद् ॥

द्वितीयः प्रपाठकः द्वितीय प्रपाठक

अथ भगवाञ्छाकायन्यः सुप्रीतोऽब्रवीद्राजानं महाराज
बृहद्रथेक्ष्वाकुवंशध्वजशीर्षात्मजः कृतकृत्यस्त्वं
मरुन्नाम्नो विश्रुतोऽसीत्ययं वा व खल्वात्मा ते कतमो
भगवान्वर्ण्य इति तं होवाच इति ॥ १ ॥

तत्पश्चात् यह सुनकर श्रेष्ठ मुनि शाकायन्य ने अति प्रसन्न होकर कहा-
हे महाराज बृहद्रथ! तुम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न नरेश ध्वजशीर्ष के
पुत्र हो। तुम सभी तरह से कृतकृत्य होते हुए 'मरुत्' के नाम से
प्रख्यात हो। यह आत्मा क्या एवं कैसा है? मैं अब तुम्हें इसके सारतत्त्व
को बताने का प्रयास करता हूँ। राजा बृहद्रथ ने कहा- हे श्रेष्ठ मुने!
आप मुझे तत्सम्बन्धित विषय के सन्दर्भ में अवश्य ही बताने की कृपा
करें ॥ १ ॥

य एषो बाह्यावष्टम्भनेनोर्ध्वमुत्क्रान्तो
व्यथमानोऽव्यथमानस्तमः प्रणुदत्येष आत्मेत्याह
भगवानथ य एष सम्प्रसादोऽस्माञ्छरीरात्समुत्थाय
परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति
होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति ॥ २ ॥

तदनन्तर महर्षि कहने लगे- हे राजन् ! बाह्य इन्द्रियों का निरोध करने से (उन्हें अन्तर्मुखी बनाने से) प्राणतत्त्व रूपी यह आत्मा योग के माध्यम से ऊर्ध्व की ओर गमन करता है। वह दुःख रूप प्रतिभासित होते हुए भी वास्तव में दुःखरहित है तथा अज्ञानरूप अन्धकार को विनष्ट करने में समर्थ है। यही आत्मा इस । नश्वर शरीर से बहिर्गमन करने पर परम ज्योतिस्वरूप परमात्मतत्त्व को वरण करके स्वयमेव अपने स्वरूप में विलीन हो जाता है। यह आत्मतत्त्व अमृतयुक्त, भयरहित तथा स्वयं ही ब्रह्मरूप है ॥ २ ॥

अथ खल्वियं ब्रह्मविद्या सर्वोपनिषद्विद्या वा राजन्नस्माकं
 भगवता मैत्रेयेण व्याख्याताहं ते
 कथयिष्यामीत्यथापहतपाप्मानस्तिग्मतेजस ऊर्ध्वरेतसो
 वालखिल्या इति श्रुयन्तेऽथैते
 प्रजापतिमब्रुवन्भगवञ्शकटमिवाचेतनमिदं शरीरं
 कस्यैष खल्वीदृशो महिमातीन्द्रियभूतस्य
 येनैतद्विधमिदं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयितास्य को
 भगवन्नेतदस्माकं ब्रूहीति तान्होवाच ॥ ३ ॥

हे राजन् ! जिस (अविनाशी ब्रह्मविद्या) का सभी उपनिषदें एक स्वर से उपदेश करती हैं, उस ब्रह्मविद्या के ज्ञान को भगवान् मैत्रेय ने मुझे बताया है, वही श्रेष्ठ ज्ञान मैं तुम्हें बतलाता हूँ। साधना द्वारा जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, ऐसे तेजस्वी एवं ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले मुनि वालखिल्य के नाम से जाने जाते हैं। ऐसा ही एक बार उन श्रेष्ठ मुनि ने ब्रह्मा जी से प्रश्न किया- हे ब्रह्मन् ! यह शरीर गाड़ी की भाँति अचेतन है, तो फिर ऐसा कौन सा अतीन्द्रिय तत्त्व है,

किस श्रेष्ठ तत्त्व की ऐसी महिमा है? जिससे कि यह शरीर चैतन्य की भाँति प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इस शरीर को जो प्रेरित करता है, उसे वाणी से भी। परे (श्रेष्ठ) बताया गया है। हे भगवन्! उसी (श्रेष्ठ तत्त्व) को हमारे समक्ष बताने की कृपा करें ॥ ३ ॥

यो ह खलु वाचोपरिस्थः श्रूयते स एव वा एष शुद्धः
 पूतः शून्यः शान्तो प्राणोऽनीशत्माऽनन्तोऽक्षयः स्थिरः
 शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः स्वे महिम्नि तिष्ठत्यनेनेदं शरीरं
 चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता चैषोऽस्येति ते
 होचुर्भगवन्कथमनेनेदृशेनानिच्छेनैतद्विधमिदं
 चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता चैषोऽस्येति कथमिति
 तान्होवाच ॥ ४ ॥

(ब्रह्मा जी ने मुनि से कहा) उस श्रेष्ठ तत्त्व को शुद्ध, पवित्र, शून्य, शान्त, जीवन प्रदान करने वाला, अनन्त, अविनाशी, शाश्वत, सनातन, स्थिर, अजन्मा एवं स्वतन्त्र रूप से निवास करने वाला आत्मा कहा जाता है। उसी की ही यह महान् महिमा है। उस आत्मा से ही इस अचेतन शरीर को चेतन की भाँति प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। वही चेतन आत्म तत्त्व प्रेरणा प्रदान करने वाला है। यह सुनने के बाद महामुनि वालखिल्य जी ने पुनः प्रश्न किया- हे भगवन्! यह आत्मा अनिच्छित होते हुए भी चैतन्यरूप से इस शरीर में कैसे स्थिर है? इस शरीर को यह प्रेरित क्यों करता है? तथा इस आत्मा की यह महिमा किस प्रकार की है? ॥ ४ ॥

स वा एष सूक्ष्मोऽग्राह्योऽदृश्यः पुरुषसंज्ञको

बुद्धिपूर्वमिहैवावर्ततेऽशेन सुषुप्तस्यैव बुद्धिपूर्वं
 निबोधयत्यथ योह खलु वावाइतस्यांशोऽयं
 यश्चेतनमात्रः प्रतिपूरुषं क्षेत्रज्ञः
 सङ्कल्प्याध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वक्षस्तेन
 चेतनेनेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता
 चैषोऽस्येति ते होचुर्भगवन्नीदृशस्य कथमंशेन
 वर्तनमिति तान्होवाच ॥ ५॥

ब्रह्मा जी ने कहा – (हे मुने!) यह आत्मा सूक्ष्म, अग्राह्य और अदृश्य रूप है, इस कारण इसे 'पुरुष' नाम की संज्ञा द्वारा जाना जाता है। यह आत्मा अपने एक अंश से इस शरीर में अपने प्रयोजन के अभाव में भी बुद्धिपूर्वक सतत आता रहता है। सोते हुए को वह युक्तिपूर्वक बोध कराते हुए चैतन्य रूप से सभी प्राणियों में प्रतिष्ठित करता है। वही प्रत्येक शरीर में क्षेत्रज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित है; वही प्रकाश, संकल्प, प्रयास, अहंकार, लिंग (पुरुष-स्त्री आदि) और प्रजापति के रूप में समस्त विश्व को देखने वाला है। उसी की चेतना से शरीर चैतन्ययुक्त है। वही इस शरीर को क्रियान्वयन हेतु प्रेरित करता है। वालखिल्य ने पुनः प्रश्न किया – हे भगवन् ! यह आत्मा अखण्ड होने पर भी किस तरह अंश रूप में यहाँ स्थिर है? ॥ ५॥

प्रजापतिर्वा एषोऽग्रेऽतिष्ठत्स नारमतैकः स
 आत्मनमभिध्यायद्वह्नीः प्रजा असृजत्त अस्यैवात्मप्रबुद्धा
 अप्राणा स्थाणुरिव तिष्ठमाना अपश्यत्स नारमत
 सोऽमन्यतैतासं प्रतिबोधनायाभ्यन्तरं प्राविशानीत्यथ स
 वायुमिवात्मानं कृत्वाभ्यन्तरं प्राविशत्स एको नाविशत्स

पञ्चधात्मानं प्रविभज्योच्यते यः प्राणोऽपानः समान
उदानो व्यान इति ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी ने कहा- हे महर्षे! सर्वप्रथम एकमात्र प्रजापति ही एकाकी रूप में थे। वे अकेले रमण (अपने को सन्तुष्ट) नहीं कर सके, तब उन्होंने अपनी आत्मा का ध्यान किया। इसके फलस्वरूप उन्होंने विभिन्न रूपों में प्रजा का सृजन किया। अपने द्वारा उत्पन्न किये वे प्राणी उन्हें (स्वयं को) निष्प्राण एवं खम्भे की भाँति (निश्चेष्ट) मालूम पड़े। तदनन्तर उन्होंने विचार किया कि इस प्रजा को सचेतन करने के लिए मैं (प्रजापति) इनके अन्तःकरण में प्रविष्ट करूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने स्वयं को वायु रूप में परिणत करके, उन सभी में प्रविष्ट हो गये। वे एक होते हुए भी पाँच रूपों में विभक्त हो गये। जो प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान के रूप में जाने गये ॥ ६ ॥

अथ योऽयमूर्ध्वमुक्तामतीत्येष वाव स प्राणोऽथ
योयमावञ्चं संक्रामत्वेष वाव सोऽपानोऽथ योयं
स्थविष्ठमन्नधातुमपाने स्थापयत्यणिष्ठं चाङ्गेऽङ्गे
समं नयत्येष वाव स समानोऽथ योऽयं पीताशितमुद्गिरति
निगिरतीति चैष वाव स उदानोऽथ येनैताः शिरा
अनुव्याप्ता एष वाव स व्यानः ॥ ७ ॥

जो ऊर्ध्व की ओर गमन करता है, वह प्राण कहलाता है। जो नीचे की ओर जाता है, वह अपान के नाम से जाना जाता है। जो अत्यन्त स्थूल अन्न एवं धातु को पाचन तन्त्र (ऊर्जा को) के माध्यम से अपाने में प्रतिष्ठित करता है तथा सूक्ष्म रूप से अंग-प्रत्यंग में समान रूप से पहुँच जाए, उसे समान कहते हैं। जो खाये-पिये पदार्थ को उगलता

और निगलता है, उसे उदान कहते हैं और जिस वायु से समस्त नाड़ियाँ परिपूर्ण हैं, वही व्यान कहलाता है ॥ ७ ॥

अथोपांशुरन्तर्याम्यमिभवत्यन्तर्याममुपांशुमेतयोरन्तराले
 चौष्यं मासवदौष्यं स पुरुषोऽथ यः पुरुषः
 सोऽग्निर्वैश्वानरोऽप्यन्यत्राप्युक्तमयमग्निर्वैश्वानरो
 योऽयमनन्तः पुरुषो येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते
 तस्यैष घोषो भवति यदेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स
 यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैनं घोषं शृणोति ॥ ८ ॥

जो समीप रहते हुए भी अन्तर्यामी (अन्तरिक्ष को जानने वाला) है तथा जो एक प्रहर के अन्तराल में पराभव कर देता है, ऐसे उन दोनों के मध्य में जो उष्णता बरसती है, वह उष्णता ही पुरुष है। जो पुरुष है, वही वैश्वानर नामक अग्नि है। अन्यत्र भी यह कहा गया है कि अन्तःकरण में विद्यमान 'पुरुष' ही वैश्वानर रूप 'अग्निपुरुष' के नाम से जाना जाता है। इस (वैश्वानर रूप अग्नि) से खाया हुआ भोजन पचता है। जो ग्रहण किया गया है, उसी का शब्द अन्तःकरण में सुनाई पड़ता है। कानों को बन्द करने पर यही ध्वनि अन्दर से आती हुई सुनाई पड़ती है। जब शरीर से प्राणों के निकलने का समय होता है, तब यह ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनायी नहीं पड़ती ॥ ८

स वा एष पञ्चधात्मानं प्रविभज्य निहितो गुहायां
 मनोमयः प्राणशरीरो बहुरूपः सत्यसं कल्प आत्मेति स वा
 एषोऽस्य हृदन्तरे तिष्ठन्नकृतार्थोऽमन्यतार्थानसानि
 तत्त्वानीमानि भित्त्वोदितः पञ्चभी रश्मिभिर्विषयान्तीति

बुद्धीन्द्रियाणि यानीमान्येतान्यस्य रश्मयः कर्मेन्द्रियाण्यस्य
 हया रथः शरीरं मनो नियन्ता प्रकृतिमयोस्य प्रतोदनेन
 खल्वीरितं परिभ्रमतीदं शरीरं चक्रमिव मृते च
 नेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता
 चैषोऽस्येति ॥ ९ ॥

वह यह प्रजापति रूपी आत्मा स्वयं ही अपने को पाँच भागों में विभक्त करके हृदयरूपी गुहा में प्रतिष्ठित है। यही आत्मा मनोमय रूप में, प्राणमय रूप में एवं तेजोमय रूप में, संकल्प रूप में तथा आकाशात्म रूप में अवस्थित है। इस प्रकार यह आत्मा हृदय प्रदेश में स्थित रहते हुए इन्द्रियों का अनुभव न करता हुआ स्वयं को अकृतार्थ अनुभव करने लगा। तदनन्तर अपने आप को कृतकृत्य करने हेतु पाँच द्वारों (इन्द्रियों) का बेधन करके प्रादुर्भूत हुआ। ये पाँच द्वार ही (श्रोत्रादि) पाँच इन्द्रियों के रूप में परिणत हो गये, जिनसे वह विषयों का उपभोग करता है। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ लगाम हैं तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ घोड़े हैं। शरीर को रथ एवं मन को सारथि की संज्ञा प्रदान की गई है और स्वभाव (प्रकृति) को चाबुक कहा गया है। इस चाबुक से प्रेरणा प्राप्त करके यह शरीर चक्र की भाँति गमन करता है। इस प्रकार यह आत्मा ही इस शरीर को सचेतन बनाए हुए है तथा इसे प्रेरित करता रहता है ॥९॥

स वा एष आत्मेत्यदो वशं नीत इव सितासितैः
 कर्मफलैरभिभूयमान इव प्रतिशरीरेषु
 चरत्यव्यक्तत्वात्सूक्ष्मत्वाददृश्यत्वाद्ग्राह्यत्वान्निर्ममत्वा
 च्चानवस्थोऽकर्ता कर्तेवावस्थितः ॥ १० ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि यह आत्मा ही शरीर के वशीभूत होकर शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप बन्धन में फँस गया है। इसी कारण वह (आत्मा) विविध शरीरों में संचरित होता रहता है, परन्तु चिन्तन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में वह अव्यक्त, सूक्ष्म, अदृश्य, अग्राह्य, ममता से रहित एवं अवस्था (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति)रहित है। अतः वह (आत्मा) अकर्ता होते हुए भी कर्तारूप में प्रतीत होता है ॥ १० ॥

स वा एष शुद्धः स्थिरोऽचलश्चालेपोऽव्यग्रो निःस्पृहः
प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्य चरितभुग्गुणमयेन
पटेनात्मानमन्तर्धियावस्थित इत्यवस्थित इति ॥११॥

यह (आत्मा) शुद्ध, स्थिर, अचल, निर्लिप्त, उद्विग्नता रहित, निःस्पृह द्रष्टा की भाँति रहते हुए अपने द्वारा किये गये कर्मों के फल का उपभोग करता हुआ-सा प्रतीत होता है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है। कि उस आत्मा ने अपने रूप को तीन गुणों (सत्, रज, तम,) रूपी वस्त्र द्वारा आच्छादित कर रखा है ॥ ११ ॥

॥ इति द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥

॥ द्वितीय प्रपाठक समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मैत्रायण्युपनिषत् ॥

॥ मैत्रायणी उपनिषद् ॥

तृतीयः प्रपाठकः तृतीय प्रपाठक

ते होचुर्भगवन् यद्येवमस्यात्मनो महिमानं सूचयसीत्यन्यो
वा परः कोऽयमात्मा सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः
सदसद्योनिमापद्यत इत्यवाचीं वोर्ध्वा वा गतं
द्वन्द्वैरभिभूयमानः परिभ्रमतीति कतम एष इति
तान्होवाच ॥ १ ॥

महर्षि ने पुनः प्रश्न किया – हे भगवन् ! इस आत्मा की महिमा का वर्णन यदि इस प्रकार है, तो पुनः वह (आत्मा) श्रेष्ठ एवं निकृष्ट कर्मों के बन्धन में बँधा हुआ तथा अच्छी-बुरी योनियों में घूमता हुआ क्या कोई अन्य आत्मा है? सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से अभिभूत ऊर्ध्वगामी अथवा अधोगामी गतियों में विचरण करने वाला कौन है ? ॥ १ ॥

अस्ति खल्वन्योऽपरो भूतात्मा योऽयं सितासितैः
कर्मफलैरभिभूयमानः सदसदयोनिमापद्यत इत्यवाचीं
वोर्ध्वा गतिं द्वन्द्वैरभिभूयमानः
परिभ्रमतीत्यस्योपव्याख्यानं पञ्च तन्मात्राणि
भूतशब्देनोच्यन्ते पञ्च महाभूतानि

भूतशब्देनोच्यन्तेऽथ तेषां यः समुदायः
 शरीरमित्युक्तमथ यो ह खलु वाव शरीरमित्युक्तं स
 भूतात्मेत्युक्तमथास्ति तस्यात्मा बिन्दुरिव पुष्कर इति स वा
 एषोऽभिभूतः
 प्राकृत्यैर्गुणैरित्यतोऽभिभूतत्वात्संमूढत्वं
 प्रयात्यसंमूढस्त्वादात्मस्थं प्रभुं भगवन्तं
 कारयितारं नापश्यद्गुणौघैस्तृप्यमानः
 कलुषीकृतास्थिरश्चञ्चलो लोलुप्यमानः सस्पृहो
 व्यग्रश्चाभिमानत्वं प्रयात इत्यहं सो ममेदमित्येवं
 मन्यमानो निबध्नात्यात्मनात्मानं जालेनैव खचरः
 कृतस्यानुफलैरभिभूयमानः परिभ्रमतीति ॥ २॥

(हे श्रेष्ठ महर्षे!) जो शुभ – अशुभ कर्मों के कारण अधोगामी हुआ है, वह तो दूसरा भूतात्मा (जीवात्मा) के नाम से जाना जाता है तथा वह कर्मानुसार अच्छी-बुरी योनियों में गमन करता है, ऊँचीनीची गतियों को प्राप्त करता है, साथ ही सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से प्रभावित होता है। पंचभूतों और तन्मात्राओं को 'भूत' कहा जाता है। इनकी समुच्चय ही शरीर है। इस कारण से इस शरीर को भूतात्मा (भूतात्मक) कहा जाता है। शरीर में निवास करने वाली यह आत्मा तो कमल के पत्तों में रहने वाली बूंदों की भाँति है; किन्तु वह अपने प्राकृतिक गुणों से प्रभावित-पराजित होकर मूढ़ बन गया है। इस कारण वह अपने अन्दर उपस्थित प्रेरक परमात्मतत्त्व को नहीं देख सकता। इस तरह वह सद्गुणों से तृप्त होता हुआ पापयुक्त, अस्थिर, चञ्चल, लोलुप, विषयासक्त, व्यग्र एवं अभिमानी होकर अहंकार युक्त हो जाता है। उसके अन्दर यह भाव आने लगते हैं कि 'यह मैं हूँ' 'यह मेरा है', इस



प्रकार वह पक्षी की भाँति जालरूपी विकारों में फँस जाता है। वह अपने द्वारा कृत-कर्मों के फलस्वरूप खुद ही आबद्ध होकर विचरण करता है ॥ २ ॥

अथान्यत्राप्युक्तं यः कर्ता सोऽयं वै भूतात्मा करणैः
कारयितान्तःपुरुषोऽथ यथाग्निनायःपिण्डो वाभिभूतः
कर्तृभिर्हन्यमानो नानात्वमुपैत्येवं वाव खल्वसौ
भूतात्मान्तःपुरुषेणाभिभूतो गुणैर्हन्यमानो
नानात्वमुपैत्यथ यत्त्रिगुणं चतुरशीतिलक्षयोनिपरिणतं
भूतत्रिगुणमेतद्वै नानात्वस्य रूपं तानि ह वा इमानि
गुणानि पुरुषेणेरितानि चक्रमिव चक्रिणेत्यथ यथायःपिण्डे
हन्यमाने नाग्निरभिभूयत्येवं नाभिभूयत्यसौ
पुरुषोऽभिभूयत्ययं भूतात्मोपसंश्लिष्टत्वादिति ॥ ३ ॥

अन्य स्थलों पर भी कहा गया है कि कर्त्तापन तो इस भूतात्मा का ही है। अन्तःकरण में विद्यमान रहने वाली पवित्रात्मा तो मात्र प्रेरणा प्रदान करने वाली है। जिस प्रकार लोहे को अग्नि में तप्त करके लुहार उसे विभिन्न रूपों में परिणत कर देता है, उसी प्रकार यह भूतात्मा शुद्ध आत्मा के द्वारा तप्त तथा सद्गुणों के द्वारा सतत प्रहार करने पर वह अन्य अनेक रूपों में परिणत हो जाता है। अर्थात् वह गुणों से युक्त हो चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है, यही अनेकत्व का स्वरूप है। जिस प्रकार चक्र (चाक) को संचालित करने वाला कुम्हार चाक से अलग रहता है, उसी तरह आत्मा (सत्, रज और तम) इन तीनों गुणों से पृथक् है। जिस प्रकार लौह खण्ड को पीटने से उसमें स्थित अग्नि नहीं पीटी जाती, वैसे ही शुद्ध आत्मा



विकाररहित होता है, परन्तु उस (शुद्ध आत्मा) को भूतात्मा के संसर्ग का दोष लग जाता है ॥ ३ ॥

अथान्यत्राप्युक्तं शरीरमिदं मैथुनादेवोद्भूतं
संविदपेतं निरय एव मूत्रद्वारेण
निष्क्रामन्तमस्थिभिश्चितं मांसेनानुलिप्तं
चर्मणावबद्धं विण्मूत्रपित्तकफमज्जामेदोवसाभिरन्यैश्च
मलैर्बहुभिः परिपूर्णं कोश इवावसन्नेति ॥ ४ ॥

इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थल पर यह भी संकेत मिलता है कि स्त्री-पुरुष के संयोग से जिस शरीर का प्रादुर्भाव होता है, वह चेतना शून्य है तथा नरक जैसा प्रतीत होता है। मूत्र द्वार से बहिर्गमन होने वाला यह शरीर हड्डियों के द्वारा गठित किया गया है। मांस से अनुलिप्त है तथा चर्म के द्वारा आवृद्ध किया गया है। मल, मूत्र, पित्त, कफ, मज्जा, मेद, वसा आदि से युक्त है। इसके अतिरिक्त अन्य कई तरह के मलों से भी परिपूर्ण है। यह शरीर ऐसा लगता है कि सभी विकार युक्त पदार्थों का कोषागार ही है ॥ ४ ॥

अथान्यत्राप्युक्तं संमोहो भयं विषादो निद्रा तन्द्री व्रणो
जरा शोकः क्षुत्पिपासा कार्पण्यं क्रोधो नास्तिक्यमज्ञानं
मात्सर्यं वैकारुण्यं मूढत्वं निर्व्रीडत्वं
निकृतत्वमुद्धातत्वमसमत्वमिति तामसान्वितस्तृष्णा स्नेहो
रागो लोभो हिंसा रतिर्दृष्टिव्यापृतत्वमीर्ष्या
काममवस्थितत्वं चञ्चलत्वं जिहीर्षार्थोपार्जनं
मित्रानुग्रहणं परिग्रहावलम्बोऽनिष्टेष्विन्द्रियार्थेषु
द्विष्टिरिष्टैश्चभिषङ्गः इति राजसान्वितैः परिपूर्णं

एतैरभिभूत इत्ययं भूतात्मा
तस्मान्नानारूपाण्याप्नोतीत्याप्नोतीति ॥ ५॥

एक अन्य स्थान में यह भी कहा गया है कि मोह, भय, विषाद, निद्रा, तन्द्रा, वृद्धावस्था, शोक, दुःख, भूख, प्यास, कार्पण्य (दीनता), क्रोध, नास्तिकता, अज्ञान, मात्सर्य, विकार, मूढ़ता, निर्लज्जता, उद्धतता, विषमता, कृतघ्नता आदि तमोगुण के विकारों से यह शरीर परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त तृष्णा, स्नेह, रोग, लोभ, हिंसा, काम-दृष्टि, व्यापार, इर्ष्या, स्वेच्छाचारिता, चंचलता, किसी की वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा, धनोपार्जन की इच्छा, मित्रों का अनुग्रह, परिग्रह का आश्रय, इन्द्रियों का अप्रिय विषयों से द्वेष और प्रिय विषयों से आसक्ति आदि रजोगुण से युक्त विकार भी उस भूतात्मा में विद्यमान रहते हैं। इन सभी विकारों के द्वारा यह भूतात्मा पराभव को प्राप्त होता है तथा पुनः अनेक रूपों को प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

॥ इति तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥

॥ तृतीय प्रपाठक समाप्त ॥



॥ श्री हरि ॥

॥ मैत्रायण्युपनिषत् ॥

॥ मैत्रायणी उपनिषद् ॥

चतुर्थः प्रपाठकः चतुर्थ प्रपाठक

ते ह खल्वथोर्ध्वरितसोऽतिविस्मिता अतिसमेत्योचुर्भगवन्नमस्ते
त्वं नः शाधि त्वमस्माकं गतिरन्या न विद्यत इत्यस्य
कोऽतिथिभूतात्मनो येनेदं हित्वामन्येव सायुज्यमुपैति
तान्होवाच ॥ १ ॥

ब्रह्मा जी के द्वारा दिये हुए उपदेश को सुनकर ऊर्ध्वरिता (अखण्ड
ब्रह्मचारी) श्रेष्ठ मुनि वालखिल्य जी अत्यधिक विस्मित हुए एवं निकट
में जाकर कहा-हे भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप ही हमें शरण
देने वाले हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई हमारा शरण स्थल नहीं।
अतः आप हमें यह समझाएँ कि इस भूतात्मा का अतिथि कौन है,
जिसके लिए यह सर्वस्व त्यागकर आत्मा में ही सायुज्य प्राप्त करता
है? ॥ १ ॥

अथान्यत्राप्युक्तं महानदीषूर्मय इव निवर्तकमस्य
यत्पुराकृतं समुद्रवेलेव दुर्निवार्यमस्य मृत्योरागमनं
सदसत्फलमयैर्हि पाशैः पशुरिव बद्धं
बन्धनस्थस्येवास्वातन्त्र्यं यमविषयस्थस्यैव
बहुभयावस्थं मदिरोन्मत्त इवामोदममदिरोन्मत्तं पाप्मना

गृहीत इव भ्राम्यमाणं महोरगदष्ट इव विपद्यष्टं
 महान्धकार इव रागान्धमिन्द्रजालमिव मायामयं स्वप्नमिव
 मिथ्यादर्शनं कदलीगर्भ इवासारं नट इव क्षणवेषं
 चित्रभित्तिरिव मिथ्यामनोरममित्यथोक्तम् ॥ शब्दस्पर्शादयो
 येऽर्था अनर्था इव ते स्थिताः । येष्वासक्तस्तु भूतात्मा न
 स्मरेच्च परं पदम् ॥ २ ॥

ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि हे श्रेष्ठ मुने! एक अन्य स्थान में कहा गया है कि जैसे बड़ी-बड़ी नदियों में तरंगें उठती रहती हैं, वैसे ही भूतात्मा में पूर्वकाल में किये हुए कर्म पाये जाते हैं। उन किये हुए कर्मों का फल इसे भोगना ही पड़ता है। पुनः जिस तरह समुद्र का किनारा लहरों के अन्त होने के लिए आवश्यक है, उसी तरह भूतात्मा के लिए मृत्यु भी अति आवश्यक है, वह शुभ व अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप बन्धनों में पशुओं की तरह आबद्ध हुआ परतन्त्र- सा बन गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह (भूतात्मा) यम के राज्य में ही निवास करता है। इस तरह वह भूतात्मा हमेशा डरा हुआ सा ही बना रहता है। विषयवासना की सुखरूपी मदिरा का पान करके वह मतवाला हो जाता है। पापरूपी भूत के द्वारा आवेशित हुआ वह यत्र-तत्र भटकता रहता है। इस प्रकार वह विपत्ति में विषधर सर्प-दंश की भाँति दुःख भोगता है। विषय-वासनाओं की इच्छा के अनुरूप घने अन्धकार में रहता हुआ वह अन्धा ही हो जाता है। जादूगर के जादू की भाँति वह माया से परिपूर्ण है, स्वप्नवत् वह मिथ्या ही परिलक्षित होता है। केले के वृक्ष के अन्तः भाग की भाँति वह सार रहित है और नट (तमाशा दिखाने वाले) की भाँति वह प्रतिक्षण नवीन से नवीनतम वेशों को धारण करता रहता है तथा चित्रों से सुसज्जित दीवार की

तरह उसका बाह्य आवरण ही सुन्दर रहता है। इसके पश्चात् यह भी कहा गया है कि शब्द, स्पर्श आदि विषय साररहित हैं। उन सार रहित विषयों में आसक्त हुआ भूतात्मा स्वयं को ही यथार्थतया स्मरण नहीं रख पाता है ॥ २ ॥

अयं वा व खल्वस्य प्रतिविधिर्भूतात्मनो यद्येव
 विद्याधिगमस्य धर्मस्यानुचरणं स्वाश्रमेष्वानुक्रमणं
 स्वधर्म एव सर्वं धत्ते
 स्तम्भशाखेवेतराण्यनेनोर्ध्वभाग्भवत्यन्यथधः पतत्येष
 स्वधर्माभिभूतो यो वेदेषु न स्वधर्मातिक्रमेणाश्रमी
 भवत्याश्रमेष्वेवावस्थितस्तपस्वी चेत्युच्यत एतदप्युक्तं
 नातपस्कस्यात्मध्यानेऽधिगमः कर्मशुद्धिर्वैत्येवं ह्याह ॥

तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात्सम्प्राप्यते मनः ।
 मनसा प्राप्यते त्वात्मा ह्यात्मापत्या निवर्तत इति ॥ ३ ॥

इस भूतात्मा की मुक्ति का उपाय ब्रह्मा जी इस प्रकार बताते हैं- ज्ञान की प्राप्ति जिस धर्म से हो सके, ऐसे श्रेष्ठ धर्म का आचरण करना चाहिए तथा अपने आश्रम धर्म का सदा पालन करना चाहिए । अन्य धर्म तो गुल्म (तृण) की शाखा की भाँति असत्य हैं। अतः वह (भूतात्मा) अपने धर्म के द्वारा ही प्रगति को प्राप्त करता है, अन्य तरह के धर्मों से तो उसे अवनति की ओर ही जाना पड़ता है। वेद में वर्णित स्वधर्म का परित्याग करने वाला आश्रमी नहीं कहा जा सकता। जो (व्यक्ति) आश्रम धर्म का निर्वाह करता है, वही तपस्वी है। यह भी कहा गया है कि जो तपस्वी नहीं है, उसका ध्यान आत्मा में नहीं एकाग्र होता।



इस कारण से उसकी कर्म शुद्धि नहीं हो पाती । तप के माध्यम से ज्ञान की उपलब्धि होती है और ज्ञान की प्राप्ति होने पर मन अपने वश में हो जाता है। मन के वशीभूत होने पर आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है और आत्मा की उपलब्धि से इस संसार सागर से मुक्ति मिल जाती है ॥ ३ ॥

अत्रैते श्लोका भवन्ति ॥

यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनोवुपशाम्यति ।
तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनोवुपशाम्यति ॥ १ ॥

जैसे अग्नि में लकड़ी के जलकर समाप्त होने पर अग्नि स्वयं ही अपने स्थान में शान्त हो जाती है, वैसे ही वृत्तियों का क्षय होने पर चित्त स्वयं ही अपने उत्पत्ति स्थल में शान्त हो जाता है ॥ १ ॥ ४ ॥

स्वयोनोवुपशान्तस्य मनसः सत्यगामिनः ।
इन्द्रियार्थाविमूढस्यानृताः कर्मवशानुगाः ॥ २ ॥

अपने उद्गम स्थल में शान्त मन जब सत्य की ओर गमन करता है, तब कर्म के वशीभूत इन्द्रियों के प्रति आसक्ति आदि भोग विषय उसे असत्य प्रतीत होते हैं ॥ २ ॥ ४ ॥

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् ।
यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ ३ ॥



चित्त ही संसार है, इस कारण प्रयत्नपूर्वक चित्त का शोधन करना चाहिए। जिस प्रकार (व्यक्ति) का चित्त होता है, उसी प्रकार ही उसे गति (दशा) प्राप्त होती है। यही सनातन नियम है ॥ ३ ॥ ४ ॥

चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमव्ययमश्नुते ॥ ४ ॥

चित्त के शान्त होने पर शुभ और अशुभ कर्म विनष्ट हो जाते हैं। चित्त के द्वारा शान्त हुआ व्यक्ति जब (चिन्तन के माध्यम से) आत्मा में स्थित होता है, तभी उसे अक्षय आनन्द की अनुभूति होती है ॥ ४ ॥
४ ॥

समासक्तं यदा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे ।
यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥ ५ ॥

मनुष्य का चित्त जितना अधिक विषय-वासनाओं (भोगों) में आसक्त होता है, यदि उतना ही कहीं (उसका चित्त) 'ब्रह्म' के प्रति आसक्त हो जाए, तो फिर उसे वासनादि विषयों के बन्धन से मुक्ति क्यों न मिल जाए? ॥ ५ ॥ ४ ॥

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं कामसङ्कल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ ६ ॥

शुद्ध और अशुद्ध यह दो स्थितियाँ मन की कही गयी हैं। कामनाओं के संकल्प से युक्त (मन) अशुद्ध है तथा कामनाओं का परित्याग कर देने वाला मन ही शुद्ध है ॥ ६ ॥ ४ ॥

लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ ७ ॥

लय और विक्षेपरहित 'मन' पूर्णरूपेण निश्चल (स्थिर) हो जाता है और जब मनोभावों (कामनाओं) का समापन हो जाता है, तभी वह परम-पद रूप को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ ४ ॥

तावदेव निरोद्धव्यं हृदि यावत्क्षयं गतम् ।
एतज्ज्ञानं च मोक्षं च शेषास्तु ग्रन्थविस्तराः ॥ ८ ॥

जब तक मन का क्षय (विनाश) न हो, तब तक ही उसका हृदय में निरोध करना चाहिए। मात्र यही ज्ञान एवं मोक्ष का सार है, अन्य शेष तो ग्रन्थों का विस्तार मात्र है ॥ ८ ॥ ४ ॥

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ ९ ॥

समाधि के द्वारा जिसके मल का परिशोधन हो गया है तथा जो आत्मा में विलीन हो गया है, ऐसा 'चित्त' ही आनन्दानुभूति की प्राप्ति कर सकता है। तब उसका वर्णन वाणी के द्वारा करने में कोई भी समर्थ



नहीं है, उसको तो मात्र अन्तःकरण के द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है ॥ ९ ॥ ४ ॥

अपामपोऽग्निरग्नौ वा व्योम्नि व्योम न लक्षयेत् ।
एवमन्तर्गतं चित्तं पुरुषः प्रतिमुच्यते ॥ १० ॥

जैसे जल में जल, अग्नि में अग्नि और आकाश में आकाश का विलय हो जाने पर उसके सभी भिन्न-भिन्न रूप परिलक्षित नहीं होते, वैसे ही चित्त का (आत्मा में) विलय हो जाने पर 'पुरुष' मुक्ति को । प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥ ४ ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतमिति ॥ ११ ॥

'मन' ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयों में आसक्त हुआ मन ही बन्धन का कारण है तथा विषयों से रहित अर्थात् विषयों में आसक्त न रहने वाला 'मन' ही मुक्ति का कारण है ॥ ११ ॥ ४ ॥

अथ यथेयं कौत्सायनिस्तुतिः ॥

त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः ।
त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः ॥ १२ ॥

इसी प्रकार कौत्सायनि ऋषि की भी प्रशंसोक्ति है- 'तुम ब्रह्मा हो, विष्णु हो, रुद्र हो। तुम प्रजापति हो, तुम अग्नि हो, तुम वरुण हो, तुम वायु हो, तुम इन्द्र हो और तुम्हीं निशाकर (चन्द्रमा) हो' ॥ १२ ॥ ४ ॥

त्वं मनुस्त्वं यमश्च त्वं पृथिवी त्वमथाच्युतः ।
स्वार्थे स्वाभाविकेऽर्थे च बहुधा तिष्ठसे दिवि ॥ १३ ॥

तुम मनु हो, तुम यम हो, तुम पृथ्वी हो, तुम अच्युत हो, तुम्हीं अपने विषय रूप में स्वाभाविक अर्थ हो तथा तुम्हीं स्वयं अपने-आप में भी विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित रहते हो ॥ १३ ॥ ४ ॥

विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् ।
विश्वभुग्विश्वमायस्त्वं विश्वक्रीडारतिः प्रभुः ॥ १४ ॥

हे सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। आप ही सम्पूर्ण विश्व की आत्मा हैं, विश्व के समस्त कार्यों को करने वाले हैं। सभी के भरण-पोषण करने वाले हैं। सब प्रकार की माया को धारण करने वाले, सर्वत्र विश्व-क्रीड़ा में प्रेम रखने वाले आप सभी के प्रभु हैं ॥ १४ ॥ ४ ॥

नमः शान्तात्मने तुभ्यं नमो गुह्यतमाय च ।
अचिन्त्यायाप्रमेयाय अनादिनिधनाय चेति ॥ १५ ॥ ४ ॥

हे शान्त आत्मा वाले! आपको नमस्कार है। अतिशय गूढ, अचिन्त्य, प्रमाणों से न जान सकने योग्य एवं आदि-अन्त रहित आपके लिए नमन-वंदन है ॥ १५ ॥ ४ ॥

तमो वा इदमेकमास तत्पश्चात्परेणेरितं विषयत्वं
 प्रयात्येतद्वै रजसो रूपं तद्रजः खल्वीरितं विषमत्वं
 प्रयात्येतद्वै तमसो रूपं तत्तमः खल्वीरितं तमसः
 सम्प्राप्तवत्येतद्वै सत्त्वस्य रूपं तत्सत्त्वमेवेरितं
 तत्सत्त्वात्सम्प्राप्तवत्सोऽशोऽयं यश्चेतनमात्रः
 प्रतिपुरुषं क्षेत्रज्ञः सङ्कल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः
 प्रजापतिस्तस्य प्रोक्ता अग्न्यास्तनवो ब्रह्मा रुद्रो विष्णुरित्यथ
 यो ह खलु वावास्य राजसोऽशोऽसौ स योऽयं ब्रह्माथ यो ह
 खलु वावास्य तामसोऽशोऽसौ स योऽयं रुद्रोऽथ यो ह
 खलु वावास्य सात्विकोऽशोऽसौ स एवं विष्णुः स वा एष
 एकस्त्रिधाभूतोऽष्टधैकादशधा द्वादशधापरिमितधा
 चोद्भूत उद्भूतत्वाद्भूतेषु चरति प्रतिष्ठा
 सर्वभूतानामधिपतिर्बभूवेत्यसावात्मान्तर्बहिश्चान्तर्बहिस्
 ह च ॥ ५॥

सृष्टि-रचना के पूर्व यह(भूतात्मा) केवल अन्धकार (अज्ञान) रूप ही
 था। तत्पश्चात् परमात्मा द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके इन्द्रियों के विषय
 रूप में परिणत हो गया । इन (रूपों) में से यह वस्तु रजोगुण के रूप
 में है। यह तमोगुण का भी स्वरूप है अर्थात् प्रेरणा प्राप्त तमोगुण ही
 तमोगुण में से प्रकट होता है। यह सत्त्व गुण का भी रूप है अर्थात्
 प्रेरणा प्राप्त हुआ सत्त्वगुण ही सत्त्वगुणों में से स्रवित हुआ है। जो यह
 चेतन सत्ता हर भूत-प्राणियों में क्षेत्रज्ञ जीव रूप से स्थिर है और
 परमात्मा का अंश है। वह संकल्प युक्त और अध्यवसायी, दृढनिश्चयी
 है, अहंकार रूप (मैं पन) से पहचाना जाने वाला तथा समस्त प्रजा

का पति है। ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र को ही परमात्मा का सबसे बड़ा और श्रेष्ठ शरीर कहा गया है। उस परमात्मा के रजोगुण अंश को 'ब्रह्मा' कहा गया है, तमोगुण अंश को 'रुद्र' और जो सतोगुण अंश है, उसे 'विष्णु' कहा गया है। इस कारण से वह एक ही परमात्मा तीन (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) रूपों में, आठ (अष्टवसु) रूपों में ग्यारह (रुद्र) रूपों में, बारह (आदित्य) रूपों में तथा अन्य (असंख्य संसारी जन रूप) अगणित रूपों में उत्पन्न हुआ है। वह इस तरह 'उद्भूत' होते हुए भी प्रत्येक भूतों-प्राणियों में स्थित है। वही समस्त प्राणियों का अधिष्ठाता है और वही अन्दर-बाहर आत्मा के रूप में विद्यमान है, वही अन्दर और बाहर है ॥ ५ ॥

॥ इति चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥

॥ चतुर्थ प्रपाठक समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मैत्रायण्युपनिषत् ॥

॥ मैत्रायणी उपनिषद् ॥

पंचमः प्रपाठकः पंचम प्रपाठक

द्विधा वा एष आत्मानं बिभर्त्ययं यः प्राणो
यश्चासावादित्योऽथ द्वौ वा एतावास्तां पञ्चधा
नामान्तर्बहिश्चाहोरात्रे तौ व्यावर्तेते असौ वा आदित्यो
बहिरात्मान्तरात्मा प्राणो बहिरात्मा गत्यान्तरात्मनानुमीयते
। गतिरित्येवं ह्याह यः

कश्चिद्विद्वानपहतपाप्माध्यक्षोऽवदातमनास्तन्निष्ठ
आवृत्तचक्षुः सोऽन्तरात्मागत्या बहिरात्मनोऽनुमीयते
गतिरित्येवं ह्याहाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो
यः पश्यति मां हिरण्यवत्स एषोऽन्तरे हृत्युष्कर
एवाश्रितोऽन्नमत्ति ॥ १ ॥

वह परमात्मा दो प्रकार की आत्माओं (स्वरूपों) को ग्रहण करता है। यह जो प्राण है तथा जो सूर्य है, यही दोनों सर्वप्रथम उत्पन्न हुए हैं। यह सूर्य बाह्य आत्मा है और प्राण अन्तः की आत्मा है। इसकी गति को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह अन्तरात्मा ही है। वेदों में कहा गया है कि यह आत्मा गतिरूप ही है। जिस विद्वान् के पापों का शमन हो चुका है, वह सभी का अध्यक्ष होता है। उसका मन पवित्र होता है तथा उसकी स्थिति परमात्मा में ही रहती है। उस

(विद्वान्) का ज्ञान-चक्षु जाग्रत् हो जाता है तथा वह अन्तरात्मा में ही स्थिर रहता है। वह गतिशील होता हुआ बहिर्गमन कर जाता है। आत्मा की गति का अनुमान लगाया जा सकता है, ऐसा वेदों ने भी प्रतिपादित किया है। सूर्य के मध्य भाग में जो 'पुरुष' स्वर्ण के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जो हमें हिरण्यमय अर्थात् प्रकाश स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वही (पुरुष) हृदयरूपी कमल में स्थित रहते हुए अन्न को ग्रहण करता है ॥ १ ॥

अथ य एषोऽन्तरे हृत्पुष्कर एवाश्रितोऽन्नमत्ति स
 एषोऽग्निर्दिवि श्रितः सौरः कालाख्योऽदृश्यः
 सर्वभूतान्नमत्ति कः पुष्करः किमयं वेद वा व
 तत्पुष्करं योऽयमाकाशोऽस्येमाश्चतस्रो दिशश्चतस्र
 उपदिशः संस्था अयमर्वाग्निः परत एतौ
 प्राणादित्यावेतावुपासीतोमित्यक्षरेण व्याहृतिभिः सावित्र्या
 चेति ॥ २ ॥

जो (पुरुष) हृदय-कमल में विद्यमान एवं अन्न ग्रहण करता है, वही (पुरुष) इस सूर्य की अग्नि के रूप में आकाश में प्रतिष्ठित है। यही काल-नाम से युक्त (पुरुष) है। वह अदृश्य होते हुए भी सर्वभूत रूपी अन्न का भक्षण करता है। यह कमल क्या है? यह क्या जानकारी रखता है? इसका उत्तर यह है कि जो यह आकाश है, यही कमल है और इसमें निवास करने वाला वह समस्त प्रकार की जानकारी रखता है, वह इन चारों दिशाओं एवं उपदिशाओं में प्रतिष्ठित है। वह सभी से परे अर्थात् श्रेष्ठ है। इस प्राण और आदित्य की ॐकार से युक्त एवं व्याहृतियों सहित गायत्री-सावित्री महामन्त्र से उपासना करनी चाहिए ॥ २ ॥

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्ते चामूर्ते चाथ यन्मूर्ते
 तदसत्यं यदमूर्ते तत्सत्यं तद्ब्रह्म यद्ब्रह्म
 तज्ज्योतिर्यज्ज्योतिः स आदित्यः स वा एष ओमित्येतदात्मा स
 त्रेधात्मानं व्यकुरुत ओमिति तिस्रो मात्रा एताभिः सर्वमिदमोतं
 प्रोतं चैवास्मिन्नित्येवं ह्याहैतद्वा आदित्य ओमित्येवं
 ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति ॥ ३ ॥

ब्रह्म के दो रूप हैं- मूर्त और अमूर्त । जो मूर्तरूप है, वह असत्य है और जो अमूर्त रूप है, वह सत्य है, वही (यथार्थ) ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वही ज्योति है और जो ज्योति है, वही आदित्य है। वही ॐकार (प्रणव) है, वही आत्मा है। उसने अपने स्वरूप को तीन प्रकार से प्रकट किया है। ॐकार तीन मात्राओं से युक्त है। इसी ॐकार में सभी तत्त्व विद्यमान हैं, इस तरह श्रुति में वर्णन मिलता है। आदित्य ही ॐकार स्वरूप ब्रह्म है, ऐसा ध्यान करते हुए पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा का उसके साथ संयोजन करे ॥ ३ ॥

अथान्यत्राप्युक्तमथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः
 स उद्गीथ इत्यसावादित्य उद्गीथ एव प्रणव इत्येवं
 ह्याहोद्गीथः प्रणवाख्यं प्रणेतारं नामरूपं विगतनिद्रं
 विजरमविमृत्युं पुनः पञ्चधा ज्ञेयं निहितं
 गुहायामित्येवं ह्याहोर्ध्वमूलं वा आब्रह्मशाखा
 आकाशवाय्वग्निदकभूम्यादय एकेनात्तमेतद्ब्रह्म
 तत्तस्यैतत्ते यदसावादित्य ओमित्येतदक्षरस्य
 चैतत्तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीताजस्रमित्येकोऽस्य रसं

बोधयीत इत्येवं ह्याहैतदेवाक्षरं पुण्यमेतदेवाक्षरं
ज्ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि जो उद्गीथ (उद्=प्राण, गीथ= अभिव्यक्ति) है। वही ॐकार है। जो ॐकार (प्रणव) है, वही उद्गीथ है। जो प्रारम्भिक नाम से युक्त तत्त्व है, वही सभी को प्रादुर्भूत करने वाला है। वह नाम तथा रूप से युक्त है, निद्रारहित और वृद्धावस्था से रहित है, मृत्यु रहित है। इस प्रकार से उसे पाँच भागों (रूपों) में जानना चाहिए। वह हृदय रूप गुफा में ही निवास करता है, ऐसा श्रुति का मत है। इस ॐकार रूप परमात्मा का मूल ऊर्ध्व की ओर और जहाँ तक ब्रह्म है, वहाँ तक इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं। वे समस्त शाखाएँ आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि के रूप में हैं। इस एक ही तत्त्व के माध्यम से यह सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है। वही ब्रह्म है। यह समस्त विश्व उस (ॐकार) का ही स्वरूप है। यह सूर्य भी ॐकार का ही रूप है। अतः ॐकार के द्वारा उस (सूर्य) की सदा प्रार्थना करनी चाहिए। इसी एकमात्र ॐकार से ही उसके रस का बोध किया जा सकता है, ऐसा श्रुतियों का मत है। यही पवित्र अक्षर रूप ब्रह्म है, इसी ॐकाररूप अक्षर का बोध करके मनुष्य जो भी चाहे, इच्छानुसार प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

अथान्यत्राप्युक्तं स्तनयत्येषास्य तनूर्या ओमिति
स्त्रीपुंनपुंसकमिति लिङ्गवत्येषाथाग्निरव्युरादित्य इति
भास्वत्येषाथ रुद्रो विष्णुरित्यधिपतिरित्येषाथ गार्हपत्यो
दक्षणाग्निराहवनीय इति मुखवत्येषाथ ऋग्यजुःसामेति

विजानात्येषथ भूर्भुवस्वरिति लोकवत्येषाथ भूतं
 भव्यं भविष्यदिति कालवत्येषाथ प्राणोऽग्निः सूर्यः इति
 प्रतापवत्येषाथात्रमापश्चन्द्रमा इत्याप्यायनवत्येषाथ
 बुद्धिर्मनोऽहङ्कार इति चेतनवत्येषाथ प्राणोऽपानो व्यान
 इति प्राणवत्येके त्यजामीत्युक्तैताह प्रस्तोतार्पिता
 भवतीत्येवं ह्याहैतद्वै सत्यकाम परं चापरं च
 यदोमित्येतदक्षरमिति ॥ ५॥

पुनः इसके पश्चात् अन्यत्र कहा गया है कि इस (ब्रह्मा) का शरीर जो शब्द उच्चारित करता है, उसे ॐ कहते हैं। यह (ॐकार) स्त्री-पुरुष एवं नपुंसक इन तीनों लिङ्गों से युक्त है। अग्नि, वायु एवं सूर्य के रूप में यह प्रकाश देने वाला है तथा ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु के रूप में अधिपति स्वरूप है। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय ये ही तीनों अग्नियाँ उसके तीन मुख हैं तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को भी वह जानने में समर्थ है। भूः, भुवः और स्वः ये तीन लोक भी इसी के रूप हैं। उस ॐकार रूप ब्रह्म के भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीन काल हैं। प्राण, अग्नि और आदित्य उसके प्रताप हैं। अन्न, जल और चन्द्रमा उसके पोषक तत्त्व हैं। बुद्धि, मन और अहंकार ये तीनों उसकी चेतना हैं तथा प्राण, अपान एवं व्यान उसके प्राण हैं। ऐसा ही अनेकों ने कहा है। यह स्तुति करने वाला तथा स्वयं अर्पित करनेवाला कहा गया है, ऐसा श्रुति का वचन है। हे सत्य कामना वाले! यही (ॐकार) पर एवं अपर रूप ब्रह्म है। यह ॐकार ही अक्षर है॥ ५ ॥

अथ व्यात्तं वा इदमासीत्सत्यं प्रजापतिस्तपस्तप्त्वा
 अनुव्याहरद्भूर्भुवःस्वरित्येषा हाथ प्रजापतेः स्थविष्ठा

तनूर्वा लोकवतीति स्वरित्यस्याः शिरो नाभिर्भुवो भूः पादा
 आदित्यश्चक्षुरायत्तः पुरुषस्य महतो मात्राश्चक्षुषा
 ह्ययं मात्राश्चरिति सत्यं वै चक्षुरक्षिण्युपस्थितो हि
 पुरुषः सर्वार्थेषु वदत्येतस्माद्भूभुवःस्वरित्युपासीतात्रं हि
 प्रजापतिर्विश्वात्मा विश्वचक्षुरिवोपासितो भवतीत्येवं
 ह्याहैषा वै प्रजापतिर्विश्वभृत्तनूरेतस्यामिदं
 सर्वमन्तर्हितमस्मिँश्च सर्वस्मिन्नेषान्तर्हितेति
 तस्मादेषोपासीतेति ॥ ६ ॥

इसके अनन्तर इस (ऊँकाररूप ब्रह्म) ने जो विस्तार किया, वही सत्य है। प्रजापति ने कठोर तप करके उन तीन व्याहृतियों भूः, भुवः और स्वः का उच्चारण किया। यही (व्याहृतियाँ) प्रजापति का स्थूल शरीर है। इसका निर्माण लोकों के द्वारा हुआ है। स्वः उसका मस्तक है, भुवः नाभि है, भूः पैर हैं और आदित्य उसके नेत्र हैं। यह सब उसके अधीन है। महापुरुषों की ये मात्राएँ (अंश) हैं। यह (पुरुष) नेत्रों के द्वारा इन मात्राओं में गमन करता है। सत्य ही नेत्र हैं। नेत्र में स्थित पुरुष ही सभी पदार्थों के विषय में बतलाता है। अतः भूः, भुवः और स्वः इस विधि के अनुसार ही उपासना करनी चाहिए। अन्न ही प्रजापति है। वह सभी का आत्मा तथा सभी का चक्षु है, वह उपास्य है, ऐसा वेद भी कहते हैं। यह प्रजापति ही समस्त विश्व को धारण करने वाला शरीर है, इसमें वह सभी कुछ स्थित है तथा वह इन सभी में विद्यमान है। अतः इसी श्रेष्ठ तत्त्व की उपासना करनी चाहिए ॥ ६ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौ वा आदित्यः सविता स वा एवं
 प्रवरणाय आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथ भर्गो देवस्य

धीमहीति सविता वै तेऽवस्थिता योऽस्य भर्गः कं
 सञ्चितयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथ धियो यो नः प्रचोदयादिति
 बुद्धयो वै धियस्ता योऽस्माकं
 प्रचोदयादित्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथ भर्ग इति यो ह वा
 अस्मिन्नादित्ये निहितस्तारकेऽक्षिणि चैष भर्गाख्यो
 भाभिर्गतिरस्य हीति भर्गो भर्जति वैष भर्ग इति
 ब्रह्मवादिनोऽथ भर्ग इति भासयतीमाँल्लोकानिति
 रञ्जयतीमानि भूतानि गच्छत इति
 गच्छत्यस्मिन्नागच्छत्यस्मा इमाः
 प्रजास्तस्माद्भारकत्वाद्भर्गः शत्रून्सूयमानत्वात्सूर्यः
 सव्नात्सविता दानादादित्यः
 पवनात्पावमानोऽथायोऽथायनादादित्य इत्येवं ह्याह
 खल्वात्मनात्मामृताख्यश्चेता मन्ता गन्ता स्रष्टा
 नन्दयिता कर्ता वक्ता रसयिता घ्राता स्पर्शयिता च
 विभुविग्रहे सन्निष्ठा इत्येवं ह्याहाथ यत्र द्वैतीभूतं
 विज्ञानं तत्र हि शृणोति पश्यति जिघ्रतीति रसयते चैव
 स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं
 कार्यकारणनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किं
 तदङ्गं वाच्यम् ॥ ७ ॥

'तत्सवितुर्वरेण्यं' यही उस सविता का प्रकाश है अथवा स्वयं ही यह
 आदित्य है और यही समस्त प्राणि-समुदाय को उत्पन्न करने वाला
 'सविता' है। ऐसा जानकर आत्मतत्त्व की इच्छा रखने वाले को, उसी
 को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसा ब्रह्म का प्रतिपादन
 करने वाले कहते हैं। अब 'भर्गो देवस्य धीमहि' इस पद का विवेचन
 करते हैं; इसके अनुसार क्योंकि वह 'भर्ग' सम्मुख ही उपस्थित रहता

है। उनका जो 'भर्ग' है, वह बुद्धि (ज्ञान) को प्राप्त करता रहता है। ब्रह्मवादी प्रायः प्रश्न करते रहते हैं कि हम किसका चिंतन करें ? तो इसका उत्तर यह है कि हम उस 'भर्ग शक्ति' का ही ध्यान करें। अब 'धियो यो नः प्रचोदयात्' की विवेचना करते हैं। इसके अनुसार बुद्धि को ही 'धी' कहते हैं। जो हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करता है – सन्मार्ग की ओर उन्मुख करता है' ऐसा ब्रह्मवादी कहते हैं। 'भर्ग' वही है, जो सूर्य में निहित है। आँख की पुतली में भी ' भर्ग' स्थित है। इसकी कान्ति से मनुष्य गति करता है, अतः यह 'भर्ग' है अथवा यह सभी को तप्त करता है, इस कारण से यह 'भर्ग' कहलाता है। यह रुद्र को ब्रह्म मानने वालों के विचार हैं। 'भ' अर्थात् लोकों को प्रकाशित करने वाला, 'र' अर्थात् समस्त प्राणियों का रञ्जन करने वाला एवं 'ग' अर्थात् प्राणियों-प्रजाओं के गमनागमन का आधार स्वरूप, इस प्रकार भ, र, ग होने से भर्ग है । निरन्तर प्रसव (जन्म देने) के कारण सूर्य कहलाता है, सबको प्रादुर्भूत करने के कारण 'सविता' कहलाता है। सबको प्रकाश देने के कारण आदित्य और सबको पवित्र करता है, इससे पवमान कहलाता है अथवा सभी की ओर गमन करने से तथा सभी को अयन (आश्रय स्थल) होने से उसे 'आदित्य' कहते हैं। वह स्वयं ही आत्मा है। इसका नाम अमृत है, सर्वज्ञ है, चिन्तन करता है, गति करता है, सृजन करता है, आनन्द प्रदान करता है, स्वयं कहता है, स्वाद लेता है, सूँघता है, स्पर्श करता है, समस्त शरीर में व्याप्त रहता है और उत्तम स्वाद से युक्त है, ऐसा (वेद) कहते हैं। जहाँ पर विज्ञान द्वैत (दो) रूप में होता है, वहाँ जो सुनता है, देखता है, सूँघता है, स्वाद लेता है और स्पर्श करता है, वह सब आत्मा ही है, इस तरह से तुम ऐसा निश्चय रखो। जहाँ विज्ञान

अद्वैत हो जाता है, वहाँ कार्य और कारण से रहित, वर्णनातीत, उपमारहित तथा व्याख्या विहीन हो जाता है। ऐसे उस ' भर्ग-शक्ति' के संदर्भ में क्या कहा जाए? ॥७॥

एष हि खल्वात्मेशनः शंभुर्भवो रुद्रः
 प्रजापतिर्विश्वसृष्टिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः शान्तो
 विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता सम्राडिन्द्र इन्दुरिति य
 एष तपत्यग्निना पिहितः सहस्राक्षेण हिरण्मयेनानन्देनैष
 वाव विजिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्यः सर्वभूतेभ्योऽभयं
 दत्त्वारण्यं गत्वाथ
 बहिःकृतेन्द्रियार्थान्स्वशरीरादुपलभतेऽथैनमिति
 विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं
 तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः
 प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८॥

(हे श्रेष्ठ मुने!) यही आत्मा है, यही सबका नियन्ता, ईश्वर, शंकर, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्वस्रष्टा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शास्ता (उपदेशक), विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, सम्राट्, इन्द्र और चन्द्र भी वही है। जो इस अग्नि के रूप में तप है और सहस्रों के चक्षु रूप में प्रकाशमय आनन्द से परिपूर्ण है, वही जानने योग्य है। सभी प्राणियों को अभय-दान प्रदान करके तपोवन में जाकर उस ' अँकार' का अनुसंधान करना चाहिए। (जो मनुष्य) इन्द्रियों के विषयभोगों का बहिष्कार करते हैं, उनको अपने शरीर में से ही वह (प्रकाश तत्त्व) प्राप्त हो जाता है। यही विश्वरूप, मनोहर, जन्म ग्रहण करने वालों का पूर्ण ज्ञाता है, सभी का परम आश्रय स्थल और ज्योतिरूप से तप्त



(प्रकाशित) होता है। यह सूर्य-सविता (परमात्मा) सहस्रों रश्मियों से युक्त, सैकड़ों तरह से वर्तमान तथा समस्त प्रजाजनों का प्राणरूप होकर प्रकट होता है ॥ ८ ॥

॥ इति पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥

॥ पंचम प्रपाठक समाप्त ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥



शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिषद्वेद्य ब्रह्म है। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात् मैं ब्रह्म से विमुख न होऊँ और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो। उपनिषदों में जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान में लगे हुए मुझ में स्थापित हों। मुझ में स्थापित हों।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें।

॥ इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ मैत्रायणी उपनिषद समाप्त ॥



संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥